शीतयुद्ध

जिंदर

शीतयुद्ध

हाँ, मैं विवाह से पहले कुआँरी नहीं रही थी...

https://www.hindiadda.com/sheetayuddh/

हैं...? क्या? ...मैं कौन सी फाइल ढूँढ़ने बैठी थी? मॉनीटर पर यह क्या फैल गया? एक झटके से अँगूठे के साथ वाली उँगली माउस पर गई। मैंने आँखें मूँद लीं। इससे मुश्किल से छुटकारा पाया था। जब कभी भी कंप्यूटर के सामने बैठी, इन फाइलों को नहीं खोला। पिछले महीने भी ऐसा ही हुआ था। उस समय सुनीता कचेहरी गई थी। मैंने उसकी वह फाइल जिसे मैंने एस. कालेज का नाम दिया था, खोलने के लिए बैठी थी। पर आर. कालेज फाइल खुल गई थी। शायद ऐसा दोनों अक्षर पास पास होने के कारण हुआ था। मुझे दोनों का भ्रम हो जाता है। मुझे तो एस. कालेज इसलिए खोलनी थी ताकि मैं उसके कालेज की दिलचस्पियों को देख सकूँ। होता उलट ही रहा है। जिसे मैं भुलाना चाहती हूँ, वह याद आ जाता है। पिछले वर्ष से यह आपस में गड्ड-मड्ड हो रहा था। मेरा मन भी उलझता जाता है। फ़ैसला करके उठती हूँ कि अब कुछ भी हो जाए, मैं दुबारा यहाँ नहीं बैठूँगी। पर इसके बिना मेरा गुजारा भी नहीं। असली दिमाग खत्म हो रहा है। कंप्यूटर के भीतर का दिमाग चल रहा है।

मन में आया कि चाय का कप पिया जाए। अब मुझसे यहाँ बैठा नहीं जाएगा। जब मेरा मन उचाट हो जाता है तो मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। फिर मैं इस कमरे में आने से गुरेज़ करती हूँ। बहुत मुश्किल से अपने आप को उठाया। जिस्म भारी-भारी-सा लगा। ऐसे समय में मुझे चाय सुकून देती है। मीठा कम, दूध कम और पत्ती तेज। यहाँ है भी कौन मेरा साथ देने वाला। सुनीता ने सिर्फ़ एक कप सुबह के समय लेना होता है। मीठा तेज़, दूध कम, पत्ती कम। वह तो मेरे साथ सलाह भी नहीं करती। हमारी चाय की साँझ कई वर्ष पहले खत्म हो गई थी। अब वो ही खाना बनाती है। मुझसे मेरी पसंद ज़रूर पूछ लेती है। यह जानते हुए भी कि मुझे जो मिल जाए वह मैं खा लेती हूँ। मैं तो यही चाहती हूँ कि वह खुश रहे।

इसलिए मैं उसकी हरेक बात मान लेती हूँ। ऐसा इसलिए भी है कि मैंने उसे अपने से अधिक समझदार समझ लिया है। मुझे अपनी बेटी पर अथाह विश्वास है। रात में हम दोनों दो घंटे डिस्कवरी चैनल देखती हैं। इनके बारे में विचार-विमर्श करती हुई डायनिंग टेबल पर आ बैठती हैं। वह बोलने से न हटे तो बार-बार टोकना पड़ता है, "बेटे, पहले खाना। सारी रात अपनी है। बेशक आधी रात तक बैठी रहना।" प्रत्युत्तर में वह ज्यादा ही रूखी हो जाती है, "नहीं मम, तुम्हारी रात तुम्हारे कमरे के लिए। मेरी रात मेरे कमरे के लिए। मुझे किसी दूसरे की दख़लअंदाजी करनी अच्छी नहीं लगती। मैंने तो तुमसे कहा था कि मुझे अलग ही रहने दो। अब भी अगर मेरी मानो तो मुझे...।" वह एक पल रुकती है। अपनी कुर्सी मेरे करीब खींच लाती। कहती, "अब तुम्हें तभी पता चलेगा जब मैं अपना अलग कमरा ले लूँगी और तुम्हारे चरण

डलवाऊँगी। थोड़ा समय इंतज़ार करो।" मैं कोई हुंकारा नहीं भरती। इस कारण कि कहीं यह भी मुझे डरा तो नहीं रही। मैं सोचने लग जाती। इसके होंठों से ये शब्द निकलते - "साडी लम्मी उडारी वे, असां हुण उड्ड जाणा" (हमारी लंबी उड़ान है, अब हमें उड़ जाना है।) मैं ममता से भर उठती। उसका माथा चूमती। कहती, "जो तुझे अच्छा लगता है, कर ले।" वह मुझे बाँहों में घेर लेती है। उसकी आँखों में नमी उतरने लगती है, "मम, तुम्हें अकेला छोड़ना भी मेरे लिए इतना आसान नहीं।"

घुटनों में हल्का-हल्का दर्द उठा था। अब मैं इस तरफ अधिक ध्यान नहीं देती। पहले डर गई थी कि कहीं गठिया ही न हो जाए। हक़ीम जी ने समझाया था कि ऐसी-वैसी कोई बात नहीं है, अपनी डाइट की तरफ ध्यान दो। अधिक सोचा न करो। सवेर-शाम को लंबी सैर किया करो। मैंने नहीं, सुनीता ने मेरी डाइट की ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया था। पर वह मेरा सोचना तो बंद नहीं कर सकती थी। मुझसे अकेले जाया नहीं जाता। कोठी वाले लॉन में पंद्रह-बीस चक्कर लगा लेती। ओस से भीगी घास दो घड़ी के लिए ठंडक पहुँचाती। हाँफ जाती तो बेंच पर गिर ही पड़ती।

चाय का कप खत्म करके गेट तक आ गई। दूर तक देखा। फ़िज़ूल-सा लगा। लंबी-लंबी साँसें लीं। अपना आपा कुछ कुछ ठीक लगा। ख़याल फिर सुनीता की तरफ चला गया। इस कमरे की ओर मुड़ आई। पहले यह चंद्र मोहन का कमरा था। पढ़ते-लिखते उसे अकेलापन पसंद था। उसे तो मेरा बेवजह आना भी अच्छा नहीं लगता था। कितना कुछ सोचकर उसने इस कोठी के एक कोने में यह कमरा बनवाया था। जैसे किसी लायब्रेरी के बाहर नेम प्लेट या कोई बोर्ड लगा होता है, ठीक वैसे ही उसने भी लिखवा रखा था - 'माई स्टडी - डोंट डिस्टर्ब मी, चंद्र मोहन'। यहाँ बैठे हुए को उसे दिखाई दे जाता था कि बाहर से कौन आ रहा है। उसने यहाँ ऐसी घंटी लगवा रखी थी जो ड्राइंग रूम से अटैच्ड थी।

उसे चाय या कॉफी की ज़रूरती पड़ती तो वह तीन-चार बार घंटी बजाता। यदि किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता होती या मुझे अपने पास बुलाना होता तो वह रुक-रुक कर सात बार घंटी बजाता। कंप्यूटर आ गया तो मैं भी यहाँ आकर बैठने लगी। पहले पहल गेम्स खेला करती थी, फिर ताश के पत्ते फेटने लगी। अपना आप कंपोज करने लगी। मैंने अपनी फाइलों का नाम रानी, रीना, रीन, रन, रनर रखा था। चंद्र मोहन ने मुझे हिदायत दी थी कि मैं उसकी फाइलों से छेड़छाड़ न करूँ। पर मैं अपना वचन पूरा नहीं कर सकी थी। यह मुझसे अनजाने ही हो जाता था। मुझे पता ही तब लगता था जब मुझे फाइल कोई और खोलनी होती थी और खुल कोई और ही जाती थी। मैं पढ़ने लगती। उसके अधिकांश स्टडी संबंधी नोट्स होते। फिर फाइलें इतनी हो गई थीं कि मैं

स्वयं इनमें उलझ गई। दो तीन बार ही उसकी ज़िंदगी से संबंधित विवरण मिले थे। कालेज में दाख़िला लेते ही सुनीता भी कंप्यूटर के आगे बैठने लग पड़ी थी।

अरे! अब यह फाइल खुल गई।

...पच्चीस वर्ष कोई थोड़ा समय नहीं होता। इन वर्षों में मैं टूटी, विचलित हुई और कम से कम दस-बारह बार मेरे मन में यह ख़याल आया कि मुझे तलाक ले लेना चाहिए। इसके अलावा कोई दूसरा चारा नहीं। ज़िंदगी फिर से शुरू की जा सकती है। नहीं तो रोग बढ़ते ही जाएँगे। चंद्र मोहन ने कहा था कि मुझे सायक्लोजिस्ट के पास जाना चाहिए। अधिक सोचना मन में गाँठें पैदा करता है। मैं उससे यह कहना चाहती थी कि नहीं, मुझे इस सबकी ज़रूरत नहीं। वह अपने लिए जाए।

नहीं, मैं उसको लेकर जाऊँ। नहीं, यह भी नहीं। मैं पहले जाकर सायक्लोजिस्ट को मिलूँ। उससे कहूँ कि मेरे बैठे बैठे इससे ये-ये सवाल अवश्य पूछना, तलाक वाला भी। कि क्या वह भी तलाक चाहता है? पर मुझे लगता नहीं, वह ऐसा कभी नहीं सोच सकता। उसने कभी कोई ऐसा संकेत नहीं दिया। उसने तो पहले इशु के वक़्त मुझे अबॉरशन नहीं करवाने दिया था। यह जानते हुए भी कि मेरे करियर के लिए यह नौकरी अहम थी। "प्लीज़, मुझे रिजल्ट का इंतज़ार तो करने दो। इस बार मेरे पेपर अच्छे हुए हैं। मैं अवश्य ही मैरिट में आऊँगी। मुझे इतनी जल्दी बच्चा नहीं चाहिए।" उसका कहना था, "पेपर दुबारा भी दिए जा सकते हैं। मुझे अपना पहला इशु डिस्ट्राय नहीं करना।" क्या वह कोई जाल तो नहीं फैला रहा था? शुरू शुरू में वह मुझे भोला भाला लगा था। अब नहीं। ...उसे घर से बेइंतहा मोह था। उसकी यही इच्छा होती थी कि वह हर महीने की ट्यूशन वर्क पर हुई कमाई से कोई न कोई चीज़ खरीद कर लाए।

मैं रोकती-टोकती। वह मेरे सामने चुप कर जाता। पर उससे रहा न जाता। टेलीविज़न का शोकेस कितना बढ़िया था। अभी छह महीने पहले ही तो बदला था। पता नहीं यह ऐसा कहाँ देख आया, इसने इसे बेच दिया था। नया खरीद लाया था। मैंने उसे क्या कहना था। मुझे तो स्वयं उसके चुनाव की दाद देनी पड़ती थी। वह किसी न किसी काम में अपने आप को उलझाए रखता। पढ़ते पढ़ते या नोट्स तैयार करते जब थक जाता तो फूलों की क्यारियों को पानी देने लग जाता। फिर मैं खुद भी घर को बाँधने लग पड़ी थी क्योंकि कई साल मुझे यह भय रहा था कि कहीं हमारे संबंध खत्म होने वाली सीमा पार न कर जाएँ। दरअसल मैं अंदरखाते बहुत डर गई थी।

रानी, पी.एम. पाँच।

'...समाज एक संस्था' पर मेरे संग बहस करते हुए चंद्र मोहन ने कहा, "विवाह भी एक तरह से समझौता होता है। तूने सोशल कंट्रैक्ट थ्यौरी...?"

मैंने उसे बीच में ही टोक कर कहा, "समझौता नहीं यह एक साँझ होती है।"

"नहीं, मेरी सरकार, पहले समझौता होता है। बाकी सबकुछ छोड़ दे। अपनी ही बात ले ले। यह अपनी शुरुआत है। शायद तुझे इस बात का अहसास बहुत समय बाद हो। पहले समझौता होता है। फिर यह साँझ का रूप धारण कर सकता है। इसके बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।"

मैंने अपना फ़ैसला सुना दिया, "मैं तो इसे साँझ ही माने बैठी हूँ।"

मुझे उसकी बहुत सी बातें बेमौका लगतीं। कोई दूसरा समय होता तो मैंने उसके साथ सींग फँसा लेने थे। हम लॉन में बैठे थे। सूरज का गोला कुछ ज्यादा ही लाल होता जा रहा था। मैं रात का मज़ा किरकिरा नहीं करना चाहती थी। इसीलिए मैंने इस वक्त उसकी कई बातों को अनसुना कर दिया था। उसने यहाँ तक कह दिया था, "मैं तुझे सैटिसफाई नहीं कर सकता। तू पूछ, क्यों? तू अच्छी-भली बातें करती करती बीच में अपनी ईगो घुसेड़ देती है। इमोशनल हो जाती है। मैं मानता हूँ, तू मेरे से अधिक समझदार है।" यह भी उसके पास एक हथियार होता था। इसे क्या कहूँ? ईगो मेरी है या उसकी? क्या कोई आदमी ईगो के बग़ैर भी रह सकता है? प्रारंभ में जो साँझ थी, वह समझौता कैसे हो गई?

रानी, ए.एम. दस।

आदि पर्व में सूर्य कहता है, "हे कुंती! कन्या शब्द की उत्पत्ति करम धातु से हुई जिसका अर्थ है - वह चाहे जिस पुरुष की इच्छा कर सकती है। कन्या स्वतंत्र है। विवाह आदि संस्कार सब छोटे हैं। मेरे संग समागम करने के बाद भी तू कन्या ही रहेगी।"

...फेरे पड़ रहे थे। चंद्र मोहन चोर आँख से मेरी ओर देख रहा था। मैंने भी उसके साथ नज़रें मिलाई थीं। उसके सिर पर बँधी पगड़ी खूब जच रही थी। गौरा रंग। रस्में होती गईं। मैं बिलकुल नहीं घबराई। मैंने खुद को इस काम के लिए पहले ही तैयार कर रखा था।

एक दिन सुनील ने कहा था, "रानी, जब तेरी डोली उठेगी, तू चीख़ें मार-मार कर रोएगी। मैं गीत गाऊँगा - बाबुल मेरा घर छूटा जाए रे..."

"नहीं, मैं नहीं रोऊँगी। मैं जानती हूँ कि एक दिन मैंने यह घर छोड़ना ही है। फिर मूर्खों की तरह क्यों रोना। मेरे साथ विट लगा ले। तू रोएगा, न कि मैं।"

"मैं..."

"हाँ, तू... मैं तो डोली में बैठकर अपने घर चली जाऊँगी।"

हमने शर्त लगा ली थी कि देखो, कौन रोता है। मैंने कई विवाह अटैंड किए थे। फिर तो जैसे किसी फिल्म का सीन चल रहा होता है, यह सब कुछ भी उसी तरह का होता हुआ लगा था। फ़र्क था तो पंडित की दी शिक्षा का। मैं एकाग्रचित्त होकर सुनने लगी थी।

"देख बिटिया, पति का घर ही तेरी अंतिम मंजिल है। तुझे उसे अपना परमात्मा समझना है। उसकी रज़ा में राजी रहना है। उनके कहे को हुक्म मानना है।" उन्होंने बहुत कुछ और भी बताया था। मेरे मन में आया था कि कानों में उँगलियाँ ठूँस लूँ। उस रात चंद्र मोहन की घबराहट, बेचैनी और एकदम ट्यूब ऑफ करना उसके असंतुलित मन के प्रति शंका पैदा करने लगे थे।

यह तो मैं पहली बार पढ़ रही थी।

...पिछले हफ्ते अभिमन्यु के बारे में पढ़ रहा था। कई अजीब बातों का पता चला। मैं इनका विश्लेषण करने लगा। फिर इसे छोड़कर अपनी ओर मुखातिब हुआ। इन दिनों मैं कुछ अधिक ही सोचने लगा था। जड़ों को खँगालने तक जाने लगा था। अपनी पर आ गया था। डैडी ने दूसरा विवाह करवाया था। तब उनकी उम्र पैंतालीस वर्ष की थी। मम्मी की सिर्फ़ बीस साल की। पहले भी दो बच्चे थे। बड़ी बहन जी की उम्र तो मम्मी जितनी होगी। घर में विरोध उठा था। बगावत हुई थी। मम्मी और बहन जी की तो पहले दिन से ही नहीं बनी थी। मम्मी टेंशन में रहती थी। एक घर को सँभालना और दूसरा लोगों की नज़रों में उकरी इबारत को पढ़ना। उनके लिए ये दिन यातना से भरपूर थे। उनमें सहन करने की अथाह शक्ति थी। वह डैडी जी को क्या-क्या बताती। डैडी जी भी दोहरी मार झेल रहे थे। दफ़्तर में उनके बॉस ने उनकी ए.सी.आर. खराब लिख दी थी क्योंकि उनके बॉस के दोस्त ने टेंडरों पर ऑब्जेक्शन लगा दिया था।

घर लौटते तो दादी जी ने शिकायतों का चिट्ठा बनाकर रखा होता जिसमें मुख्य बात यह होती कि रानी बच्चों के संग फ़र्क़ करती है। यह बच्चों के संग प्यार से नहीं बोलती। अपने कमरे में घुसी रहती है। घर के कामों में ध्यान नहीं देती। मम्मी ने यह भी चाहा था कि वह अपना रिजाइन वापस ले ले। समय पड़ा था। उसने अभी

एफीडैविट नहीं दिया था। कोई अन्य ही बहाना बनाया जा सकता था। दफ़्तर में सात-आठ घंटे अच्छे बीत जाएँगे। डैडी जी नहीं माने थे। वह अपनी जगह पर सच्चे थे कि घर को कौन सँभालेगा। वह यह भी कह देते, "जब मैं बैठा हूँ, फिर तू क्यों घबराती है। मैंने विवाह तेरी रज़ामंदी से करवाया है। तुझे सारी सिच्युएशन का पता है। बोल्ड हो। माता जी पुराने ख़यालों के हैं। मैं और तू उन्हें नहीं बदल सकते। कांता के साथ तू माँ वाला नहीं, सहेलियों वाला बर्ताव किया कर...।" इसी समय में मेरा जन्म हुआ था। मेरी आमद को अच्छा नहीं समझा गया था। कोई खुशी नहीं मनाई गई। दादी जी ने लड्डू भी नहीं बाँटने दिए थे। इस सब बातों से मम्मी दुखी रहते थी। उनके वश में कुछ नहीं था। अगर कुछ था तो वह था डैडी का प्यार भरा साथ। डैडी ने उन्हें कभी डोलने नहीं दिया। पर उन्हें कौन सा सारा दिन घर में रहना होता था। फिर बात यहाँ तक भी आ पहुँची थी कि दादी जी और बहन जी ने मम्मी को बुलाना ही छोड़ दिया था।

मेरे कुलीग कहते हैं कि मैं शीघ्रता में कहीं कोई फ़ैसला नहीं ले सकता। मैं तो दूसरे की प्रतीक्षा करता हूँ कि अगला इस बारे में अपनी क्या प्रतिक्रिया देता है। मुझे जल्दबाजी नहीं होती। जल्दीबाजी में लिए गए फ़ैसलों से नुकसान ही होता है। शायद वे मेरे बारे में ठीक ही सोचते हों। पर मैंने कभी ग़लत कदम नहीं उठाया। मैंने रानी को यही सब समझाया था। अब मेरी एक ही ख्वाहिश है कि सुनीता एम.बी.ए. कर जाए। वह अपना साथी स्वयं चुन ले। उसके हठी स्वभाव के विषय में सोच कर मैं डर जाता हूँ। यह बेगाने घर जाकर अपने को कैसे एडजस्ट करेगी। रानी ने इसे कुछ ज्यादा ही आज़ादी दे रखी है। माँ-बेटी फ़ैसला कर लेती हैं। मुझे बाद में सूचित करती हैं।

निरा झूठ। यूँ ही बकवास करता है। मैं कब तक बर्दाश्त कर सकती थी। किसी बात की कोई हद होती है। मुझसे आगे पढ़ा नहीं गया। उबासियाँ आने लगीं। माउस पर उँगली का दबाव कम हो गया। ई-मेल ही खोल कर न देख लूँ। क्या पता विजय ने कोई मैसेज छोड़ा हो। यहाँ तो डियर मम्म ही आया। हो सकता है कि एलिजा काम पर से आ गई हो या कोई दोस्त-यार मिलने आ गया हो। विजय मैसेज छोड़ते छोड़ते उठ खड़ा हुआ हो। कुछ दिन पहले वह 'टाईटैनिक' के बारे में बातें कर रहा था। उसने मुझे बहुत ही भोली समझ रखा है। उससे कोई पूछे कि इधर कैबल पर क्या-क्या नहीं दिखाते। इधर की अख़बारें क्या-क्या नहीं छापतीं। इधर के लोग अब इतने भोले नहीं रहे जितना उसने समझ रखा था। अच्छे-भले 'टाईटैनिक' के बारे में विवरण देते देते कहने लगा - "मम्म, वो मंदिर है न, दशहरा ग्राउंड के सामने वाला। उसका क्या नाम है? मुझे याद नहीं आ रहा। वही जहाँ डैडी जी सुबह-शाम जाया करते थे। आप भी जाते थे। अब भी जाते होंगे। कल मेरे मन में विचार आया कि इसके आँगन में सफ़ेद संगमरमर लगाया

जाए। आप किसी आर्चीटैक्ट से इसका अंदाजा लगवाओ कि कितना खर्चा आ जाएगा। आप छोड़ो, आपसे यह नहीं होगा। आप इतना तो कर सकते हो कि टेलीफोन करके जीजा श्री को बुला लो। वो यह सबकुछ कर सकते हैं। उनसे कहना कि पैसों की बचत करने के बारे में न सोचें। काम बढ़िया होना चाहिए। मैं आपको पैसे भेज दूँगा। वहाँ सफ़ेद पत्थर पर लिखवा देना -द्वारा चंद्र मोहन सुपुत्र बलदेव राज सुपुत्र सुख चंद जरगर।

मैंने इसका कोई जवाब नहीं दिया। स्वयं जब आएगा, जो चाहे करवा ले। कई बार उसकी योजनाएँ कढ़ी के उबाल जैसी होती हैं। जल्दी भूल जाता है। मैंने उसके नाम पर मैसेज छोड़ा - तेरे डैडी की बरसी में दो महीने रह गए। तू आ जाए तो मुझे सुविधा रहेगी। मैं तो किसी ठेकेदार को सारा काम सौंप दूँगी। अब मेरे से यह झंझट नहीं होता। आगे क्या लिखूँ? इसके बारे में मुझे कुछ नहीं सूझा। मैंने यह सब डिलीट कर दिया। नए सिरे से की-बोर्ड पर उँगलियाँ चलाने लगी। सुनीता के मुकदमे का फ़ैसला शीघ्र हो जाएगा। यह बात पक्की है कि उसे तलाक मिल जाएगा। उसने अपना मन बना रखा है कि वह री-मैरिज़ नहीं करेगी। शायद अकेली ही रहे। उसे मैं कैसे समझाऊँ कि औरत को मर्द के साथ की खास ज़रूरत होती है। तू ही उसे समझा या किसी तरह अपने पास बुला ले। मेरी अधिक चिंता करने की ज़रूरत नहीं। मुझे अकेले जीना आता है। मुझसे यह भी डिलीट हो गया। मैंने तो उसे एक बार भी नहीं बताया था कि सुनीता ने तलाक का केस किया हुआ है। सुनीता का मुझे पता नहीं। मुझे कौन सा वह सब कुछ बताती है।

इस वक़्त किसका फोन हो सकता है? उठते हुए मैं कयास लगाने लगती हूँ। सुनीता का तो हो ही नहीं सकता। उसके फोन दोपहर बाद ही आते थे। मैंने उसे कहा था कि हर कमरे में रिसीवर रखवा दे। मुझसे बार बार उठा नहीं जाता। उसका जवाब था, "मम्म, टेलीफोन ड्राइंगरूम में ही पड़ा रहेगा। तुम पूछो क्यों? घंटी बजेगी। तुम उठोगे। तुम्हारी सुस्ती कम होगी। कुछ कदम चलोगे। वापस आओगे। हमें अपने अपने कमरे में रिसीवर रखने की ज़रूरत नहीं। वी आर इकुअल।" क्या मालूम सुनील का ही हो? यह संयोग ही होता कि जब मैं सोच के चक्रवातों में गोते खाने लगती थी तो मैं उसे फोन करने के बारे में सोचती और उधर से उसका फोन आ जाता। वह मुझे समझाने लग पड़ता। उम्र में मुझसे छोटा था पर बुजुर्गों की भाँति कहता, "आप अपनी ज़िंदगी की एक रूटीन बना लो। तड़के उठा करो। लंबी सैर को निकल जाया करो। वापसी आकर चाय का कप पिया। अख़बार पढ़ी। स्नान किया। मंदिर गए। घंटाभर टी.वी. देखा। सो लिया या सुस्ता लिया। लंच स्वयं तैयार किया। देखना, दिन का आपको

पता ही नहीं लगा करेगा। आप अपनी पढ़ने की रुचि बढ़ा लो। मैं जल्दी आपको विवेकानंद का पूरा सैट भेज रहा हूँ।"

यह तो सुनीता बोल रही थी, "मम्म, आज बहुत कुछ हो गया। मेरे वकील ने रमेश को घेर लिया। उससे कोई जवाब न सूझा। जज ने भी उसकी अच्छी ख़बर ली। मुझे जज पर गुस्सा आया। जब वकील बहस कर रहे हों तो जज ने सिर्फ़ सुनना होता है। कमरे में से बाहर निकलते ही मैंने रमेश से पूछा - क्यों न चाय का कप पिया जाए? आगे उसने हाँ में सिर हिला दिया। मैं उसकी कार में बैठ कर स्काईलार्क में आ गई। यह वह होटल है जिसमें हम विवाह से पहले भी जाया करते थे। बाद में हर शनिवार नियमबद्ध जाते थे। वही मेज़ थी। आमने-सामने बैठे। बातें कीं। आज की राजनीति के बारे में। ना तो उसने मुझसे मेरे बारे में पूछा। न ही मैंने उससे। वह उठने लगा तो उसने बड़ी ही नम्रता से कहा - प्लीज़, तू खुद न आया कर। तेरा वकील किस लिए है। तुझे आने की कोई ज़रूरत नहीं। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। मैं तो सिर्फ़ इस कारण ही आता हूँ कि चलो, कुछ समय बिजी रहूँगा। मैं एक पल के लिए डोल गई। अगले पल मैंने खुद को सँभाल लिया। मैंने उससे कह दिया - मैं तो आया करूँगी। मुझे आना अच्छा लगता है। मुझे कालेज से छुट्टी लेकर आना पड़ता है। उसने मुझे बस-स्टैंड पर उतार दिया। मैंने पचासेक फुट दूर जाकर देखा तो वह कार के पास खड़ा मेरी ओर ही देख रहा था।

तारीख़ वाले दिन सुनीता को चाव चढ़ जाता था। वह मुझे बार बार पूछती कि वह कल कौन सी साड़ी पहने। वह जान-बूझकर पूछती थी। मैं उसे अपनी पसंद बताती, "तुझे कल को यह वाली जँचेगी।" वह कहती, "नहीं, यह वाली रमेश को पसंद है। मुझे यह नहीं पहननी।" "फिर इनको बाहर फेंक आ।" "प्रोपर समय आने पर मम्मा यह भी हो जाएगा।" उसे रमेश को तंग करना होता था।

मैंने एक और फाइल खोल ली।

...वह बड़ा मक्कार किस्म का बंदा था। मेरे पास होते हुए भी ग़ैर-हाज़िर रहता। पर वह इस बात का आभास न होने देता। वह देर रात तक टी.वी. देखता या बदल-बदल कर कैसेट्स सुनता। उसका मुँह मेरी ओर होता। मुझे लगता, वह सारे का सारा मेरा है। मैंने किसी ऐसे आदमी के बारे में सुना था जो एक ही समय टी.वी. देख सकता था, ताश खेल सकता था, सिगरेट पी सकता था, अख़बार पढ़ सकता था, बातों का हुंकारा भर सकता था। वह लिख भी सकता था। क्या चंद्र मोहन उसी की कॉर्बन कॉपी तो नहीं?

वह मुझे पहाड़ों पर घुमाने ले जाता। पार्टियों पर संग ले जाता। छोटी-छोटी बात के लिए भी मेरी सलाह लेता। मुझे बराबर महसूस होता रहता, वह तो किसी बहुरूपिये का बड़ा भाई था। मेरा शक इस बात से भी सच में बदलता चला गया था कि उसकी हमेशा यही कोशिश रहती थी कि मुझे किसी भी रिश्तेदार के साथ ना ले जाया जाए। आख़िर क्यों? ...मैं यहाँ तक सोच बैठी थी कि वह कौन सी चीज़ थी जो हमें आपस में जोड़े बैठी थी? पति-पत्नी का रिश्ता था? या कि रिश्तेदारों का भय? हो सकता था कि इसमें रिश्तदारों का भय हो। हमारी सहमति के बाद ही मेरी मामी बिचौलन बनी थी। चंद्र मोहन को बच्चों से अथाह प्यार था। दो बच्चे। उनके नाम भी उसने ही रखे थे। उसने मुझसे यह अधिकार भी छीन लिया था। वह बताता, "मैंने तो कालेज में पढ़ते समय अपने बेटे का नाम विजय और बेटी का नाम सुनीता रख लिया था। प्लीज़, इन्हें बदलना नहीं। इसे मेरी मजबूरी ही समझ।" मुझे लगा था कि मेरे से पहले बच्चों का अधिकार उसको है।

कभी-कभी मुझे लगता कि चंद्र मोहन ने मुझे अपना लिया था।

बैठे-बैठे मेरे घुटने अकड़ने लगे। मन उतावला पड़ने लगा। अब लंबी तानकर सो जाऊँ। फिर मंदिर जाने का समय हो जाएगा। मैं जल्दी जल्दी फाइलें खँगालने लगी। सिर्फ़ पहली सतरें पढ़कर अगली फाइल खोल लेती।

...मैं जल्दी मरना चाहता हूँ। इस दुनिया से निराश हो गया हूँ। क्यों न ख़ुदकुशी कर लूँ। पर मुझसे यह नहीं होगा। मैं कुदरती मौत मरूँगा। जल्दी...। मुझे अर्द्धनिद्रा में ऐसा भ्रम पैदा होता रहता है कि मैं किसी दुर्घटना का शिकार हो गया हूँ...।

वह दुर्घटना का शिकार हुआ था। यह दुर्घटना भी उसने आप ही बुलाई थी।

मेरा सिर भारी भारी होने लगा। मुझसे कंप्यूटर के सामने से उठा भी नहीं गया। सब कुछ दुबारा से पढ़ने की लालसा बढ़ती जा रही थी। सब कुछ आज ही देख लूँ। सब कुछ आज ही जान लूँ।

इन शब्दों पर आकर मेरी दृष्टि गड़ी की गड़ी रह गई। मैंने उसे अट्ठारह प्वाइंट कर दिया।

मॉनीटर पर अक्षर चमकने लगे - मैं विवाह से पूर्व कुआँरी नहीं रही थी। तुमने भी अपनी फाइल में ये पंक्तियाँ स्टोर की हुई हैं। मैंने भी कर रखी हैं। पता नहीं, तुम्हें इस

बात का पता है कि नहीं। शायद इसी कारण डैडी ने तमाम उम्र तुम्हें अपनाया नहीं। मैं तुम्हें कहा करती थी - वी आर इकुअल, मम। है न?